क्यों बढ़ती है सिर्फ खाने-पीने जैसे जरूरी सामानों की कीमतें ?

अश्विनी कुमार

एक तरफ जहां खाद्य पदार्थों की कीमतों में आग लगी हुई हो तो उसी आग में घी डालने का काम तब होता है, जब सरकार द्वारा खरीदे गये अनाज को सरकारी खाद्य एजेंसियां खुले में सड़ने के लिए छोड़ दें। राष्ट्रमंडल जैसे 'राष्ट्रीय गरिमा' के आयोजनों एवं तथाकथित राष्ट्रोद्धार करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए रेड कारपेट बिछाने में व्यस्त हमारी 'जन कल्याणकारी' सरकार को उस सड़ते अनाज की सुध लेने की फुर्सत भी ना हो। हद तो तब होती है जब सर्वोच्च न्यायालय की फटकार के बाद भी सरकार पूरी बेशर्मी के साथ कह दे कि अनाज खुले में सड़ता हों तो सड़ें, इसे सस्ते दामों पर गरीबों को उपलब्ध नहीं कराया जा सकता। अब खाद्य सुरक्षा बिल का शिगूफा छोड़ा गया है। जिसके तहत गरीबों को सस्ता अनाज उपलब्ध कराने की वकालत राष्ट्रीय विकास परिषद की अध्यक्षा कर रही हैं, जबकि खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ी ही क्यों, इसकी कोई चर्चा नहीं हो रही है। खाद्य पदार्थों की उत्पादन लागत-कैस कम हो सकती है, इस पर भी कहीं कोई विचार नहीं हुआ। बहरहाल, खाद्य सुरक्षा को किसानों की जीवन-सुरक्षा से जोड़ा जायेगा या आम गरीब जनता को इसके तहत सड़ा हुआ अनाज मिलेगा, यह प्रश्न अभी शेष है। वैसे भी अच्छी गुणवत्ता वाला अनाज तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के गोदामों में जमा है, जो मेहनतकश गरीबों के लिए नहीं, चंद अमीरों के लिये है।

आज कल खाद्य फसलों की अपेक्षा बायो-डीजल उत्पन्न करने वाली फसलों के उत्पादन पर जोर दिया जा रहा है और खाद्य वस्तुओं की बढ़ती किमतों का ठीकरा दक्षिण एशिया के देशों पर फोड़ा जा रहा है। कहा जा रहा है कि दक्षिण एशिया के लोगों ने आय बढ़ने पर अधिक खाना शुरू कर दिया, इसलिए दुनिया में अनाज की कमी हो गयी है। यह पूरी तरह बेतुकी बात हैं क्योंकि दक्षिण एशिया में प्रति व्यक्ति अनाजों एवं दालों की खपत कम हुई है न की बढ़ी है। जब से भारत सरकार ने 'कल्याणकारी' होने का चोला बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दबाव में उतार फेंका है, तब से अति जरूरी पदार्थों और सेवाओं, जैसे आटा-दाल, डीजल-पेट्रोल, शिक्षा-स्वास्थ्य आदि के दाम लगातार बढ़ रहे हैं जबकि आरामदायक यानी विलासिता की वस्तुओं जैसे टीवी, फ्रिज, एसी, कार आदि के दामों में कोई विशेष बदलाव नहीं हुआ है।

मारुति 800 के दाम में पिछले 20 सालों में हुई वृद्धि तथा इस दौरान आटा-दाल की कीमत में हुई वृद्धि की तुलना कर पाठक स्वयं पता कर सकते हैं कि किसमें कितना परिवर्तन हुआ है। इसी तरह अन्य वस्तुओं की कीमतों की तुलना भी की जा सकती है। सरकार की भूमंडलीकरण और उदारीकरण की नीतियों की वजह से आरामदायक और विलासिता की वस्तुओं की कीमतें कमोबेश स्थिर रखने में कम्पनियां सफल रही हैं, जबकि जीने के लिए अति आवश्यक वस्तुओं की किमतों को बाजार की शक्तियों की गिरफ्त में छोड़ दिया गया है। कृषि क्षेत्र से तो सरकार ने पूरी तरह मुंह मोड़ लिया है। फलस्वरूप पिछली तीन योजनाओं में कृषि क्षेत्र में वृद्धि दर कम है तथा कृषि-उत्पादन में लागत बढ़ती जा रही है। सरकार किसानों को कोई प्रोत्साहन भी प्रदान नहीं कर रही। असल मुद्दा अब कृषि उत्पादों की सट्टेबाजी हो गयी है जिसका फायदा सिर्फ पूंजीपतियों को हो रहा है। कृषि क्षेत्र के प्रति सरकार के उदासीन रवैये सबसे नायाब उदाहरण 2011-12 का बजट है, जिसमें वित्तमंत्री ने सिंचाई क्षेत्र के विस्तार के लिए कोई विशेष कदम नहीं उठाया जबकि देश का 60 फीसदी कृषि क्षेत्र अभी सिंचाई सुविधा से वंचित है। वित्तमंत्री ने तो यहां तक कह दिया कि किसानों को अब इंद्रदेव की आराधना करनी चाहिए।

कर्ज में डूबा हुआ किसान अपने उत्पाद यानी खाद्य पदार्थों को औने-पौने दामों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को बेचने पर मजबूर है। किसानों को इतनी भी आय नहीं हो पाती कि वे अपनी लागत की भरपायी कर पायें। किसान कर्ज के जाल में फंस कर लगातार आत्महत्या कर रहे हैं और सरकार को फिक्र है तो सिर्फ बहुराष्ट्रीय निगमों की। सरकार की सोच है कि कहीं निवेश-प्रोत्साहन नहीं मिलने पर वे देश छोड़ कर चले न जायें।

किसानों से औने-पौने दामों पर खरीदे गये अनाज की कीमतें देशी-विदेशी पूंजीपतियों के हाथ लगते ऐसे बढ़ती हैं जैसे-मोटर गाड़ी गांवों के ऊबड़-खाबड़ रास्तों से निकल कर शहर की सड़कों पर सरपट दौड़ती है। कभी दूध, कभी दाल, कभी प्याज, हर खाद्य पदार्थ को कभी सड़ाने, कभी निर्यात के बहाने और कृषि उत्पाद को उचित प्रोत्साहन प्रदान न कर उनका कृत्रिम अभाव पैदा किया जाता है। फिर बाजार की बेलगाम शक्तियां बढ़ी कीमतों के माध्यम से आम जनता को जमकर लूटती हैं। तेल कम्पनियों को पेट्रोलियम पदार्थों का मूल्य हर छः महीने पर बढ़ाने की इजाजत देना सरकार अपना नैतिक दायित्व सतझती है। जब से खाद्य पदार्थों के व्यवसाय में आईटीसी और रिलायंस जैसी दैत्यकार कम्पनियां आयी हैं और फ्यूचर ट्रेडिंग (वायदा कारोबार) के नाम पर खाद्य पदार्थों की सट्टेबाजी को खाली छूट मिली है, लाखों टन खाद्य पदार्थ किस सुरसा के मुंह में समा जाते हैं, पता भी नहीं चलता। साथ ही, अनाज का सस्ते में निर्यात तथा महंगा होने पर आयात जैसे शातिराना कदम उठाये जाते हैं जिसमें मंत्री स्तर पर जमकर कमीशनखोरी की जाती है।

जरूरी खाद्य पदार्थों की बढ़ती किमतों के लिए न तो दक्षिण एशिया के गरीब लोगों की बढ़ती हुई आय जिम्मेवार है और न ही संसाधनों की कमी। हां संसाधनो का अन्यायपूर्ण असमान बंटवारा जरूर जिम्मेदार है।

जरूरी खाद्य पदार्थों की बढ़ती हुई कीमतों का असली कारण बड़े-बड़े देशी-विदेशी पूंजीपतियों की आय और मुनाफा बढ़ाने के लिये अर्थव्यवस्था पर एकाधिकार स्थापित करने की उनकी नीति है। महंगाई इसी वर्ग की पाली-पोसी हुई डायन है। सतही तौर पर भले ही पूंजीवादी अर्थव्यवस्था प्रतियोगिता के सिद्धांत पर कार्य करती दिखाई पड़ती हो, पर गहराई में उतरने पर हकीकत कुछ और ही नजर आती है। प्रतियोगिता का सिद्धांत तो सिर्फ छोटे व्यापारियों पर ही लागू होता है, जिन्हें बड़े देशी-विदेशी पूंजीपतियों यानी बड़ी दैत्याकारी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से मुकाबला करना पड़ता है। मतलब स्पष्ट है कि एक दुबले-पतले कमजोर आदमी का मुकाबला सूमो पहलवान से हो! इन बड़े दैत्यकार बहुराष्ट्रीय निगमों का सशक्त और संगठित 'कार्टेल' है जिनकी सीधी पहुंच विश्व बैंक और मुद्रा कोष तक है। अपने धन बल एवं एकाधिकारी शक्ति के जोर पर ये भारत जैसे देशों की सरकारों को अपने वश में रखती हैं। इन कम्पनियों के बजट में भी मंत्रियों एवं उच्चाधिकारियों को प्रभावित करने के लिए विशेष प्रावधान रहता है।

1950 के बाद विश्व अर्थ व्यवस्था में उभरी अल्पतंत्री पूंजीवाद की प्रवृति ने एक संगठित 'कार्टेल' का रूप धारण कर लिया और इसने दुनिया के बाजारों में वस्तुओं की कीमत का निर्धारण करना शुरू कर दिया। इनके वर्चस्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि विश्व अर्थव्यवस्था के 80 प्रतिशत हिस्से पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष तौर पर महज 200 बहुराष्ट्रीय निगमों का नियंयण है। सिर्फ 200 बहुराष्ट्रीय निगम प्रत्यक्ष तौर पर 7.1 ट्रिलियन डॉलर के उत्पादन को नियंत्रित करते हैं जो दुनिया के शीर्ष नौ देशों की अर्थव्यवस्थाओं को छोड़ कर शेष 182 देशों के कुल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) 6.9 ट्रिलियन डॉलर से भी अधिक है। ये आंकड़े 1998 के हैं, अब तो स्थिति और भी भयावह हो चुकी है। अल्पतंत्री पूंजीवाद की इस प्रवृति ने 1980 के दशक के आरम्भ से ही उदारीकरण की नीतियों के रूप में भारत में अपने पांव पसारना शुरू कर दिया था। आज देशी औद्योगिक घरानों तथा नये उभरते उच्च मध्यम वर्ग का हित भी इन बहुराष्ट्रीय निगमों से जुड़ गया है, पर पिस तो रही है देश की 85 प्रतिशत आबादी जिसके हाथ से रोजगार के अवसर छिनते ही चले जा रहे हैं, उसे महंगाई की भी जबरदस्त मार झेलनी पड़ रही है। कृषि क्षेत्र की विकास दर भी लगातार कम होती जा रही है। सिर्फ कृषि ही नहीं, कृषि के बाद सर्वाधिक रोजगार जुटाने वाली कुटीर एवं लघु औद्योगिक इकाइयां भी इस मार से दम तोड़ती जा रही हैं। इस विश्लेषण से इतना तो स्पष्ट है कि वैश्विक और देशी, दोनों बाजारों पर चंद पूंजीपतियों का राज है।

अब प्रश्न उठता है कि संगठित कार्टेल का फायदा जरूरी पदार्थों की कीमतों को बढ़ाने तथा गैरजरूरी पदार्थों की किमतों को कम अथवा स्थिर रखने में कैसे हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में वस्तु व सेवाओं की किमत मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा तय की जाती है। पूर्ति पर जहां पूंजीपतियों का नियंत्रण होता है, वहीं मांग उपभोक्ता की क्रय-शक्ति पर निर्भर करती है। यदि उपभोक्ता अपनी मांग को नियंत्रित करने की क्षमता रखता है तो कीमत बढ़ा कर आय में वृद्धि करने की नीति बेकार साबित हो जायेगी। उत्पादक कीमत बढ़ा कर आय में वृद्धि करने की नीति तभी अपनायेगा जब वह आश्वस्त हो जाये कि कीमत बढ़ाने के बावजूद मांग में कमी नहीं होगी। ऐसा सिर्फ अति आवश्यक वस्तुओं के साथ ही हो सकता है। अगर उत्पादक आरामदायक व विलासिता की वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि करता है तो उनकी मांग में भारी कमी हो सकती है। पर खाद्य पदार्थों, ईंधन, दवाई जैसी वस्तुओं और चिकित्सा, शिक्षा जैसी सेवाओं की कीमत बढ़ाने के बावजूद इनकी मांग में विशेष कमी नहीं आयेगी। इससे उत्पादक की आय बढ़ेगी और उसे अधिक मुनाफा होगा। एक उपभोक्ता आटे की कीमत बढ़ने पर भी उसे खरीदने पर मजबूर होगा, पर शीतल पेय के साथ यह बात नहीं है।

इस तरह हम पाते हैं कि पूंजीपति मुनाफा में वृद्धि के लिए आटे की कीमत तो बढ़ाना चाहेगा, पर शीतल पेय को नहीं। शीतल पेय के मामले में यह प्रचार की नीति अपनायेगा ताकि उपभोक्ता प्रचार से प्रभावित हो कर उस वस्तु को कुछ बढ़ी हुई कीमत पर भी खरीदने को तैयार हो जाये। अब समझ में आ सकता है कि क्रिकेटरों और फिल्मी सितारों पर पेप्सी और कोका कोला जैसी कम्पनियां अरबों रुपया क्यों फूंकती हैं। आज इन बड़ी कम्पनियों ने बड़े पैमाने पर प्रचार का साधन बना कर छोटे-मोटे उत्पादकों के इस क्षेत्र में प्रवेश की सम्भावना ही खत्म कर दी है। अभी हाल ही में सरकार ने बहुब्राण्ड-रिटेल के क्षेत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की छूट दी थी, राज्यों में होने वाले चुनावों के चलते इसे फिलहाल वापस ले लिया है। पर निकट भविष्य में इसे मंजूरी दी जा सकती है। सरकार का तर्क है कि इससे कीमतें कम होगी। हां। शुरुआत में छोटे व्यापारियों को बाजार से बाहर धकेलने के लिए कीमतें कम भी कर दी जायगी पर भविष्य में तो कम्पनियों का एक क्षत्र राज होगा। तब कीमत भी उनकी, विलास-उपभोग संस्कृति भी उनकी।

शासक वर्ग और पूंजीपतियों को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि लोग कुपोषण और भूख से मरते हैं, किसान आत्महत्या करते हैं, लोगों की स्वास्थ्य व शिक्षा जैसी जरूरतें पूरी होती हैं या नहीं। पूंजीपतियों की चिंता का विषय है उनका लाभ और नेताओं की चिंता का विषय है उस लाभ में उनका कमीशन।

रैली बनाम रैली

एक रैली अन्ना ने की थी एक सोनिया सरकार ने। अन्ना ने किसी मुख्यमन्त्री के माध्यम से सरकारी मशीनरी को भीड़ ढो कर लाने को नहीं कहा। कहते तो कौन सा वे लाने वाले थे। वे तो केवल सोनिया का हुकुम बजाते हैं। बजायें भी क्यों ना आखिर नौकरी किस की कर रहे हैं। हरियाणा व राजस्थान की सरकारी मशीनरी ने सारे काम काज छोड़कर अपनी पूरी ताकत सोनिया रैली हेतु भीड़ जुटाने में लगा दी। अखबारों में छपी खबरों के मुताबिक अकेले हरियाणा से 5000 बसें भेजी गयीं। एक बस में यदि 40 जने भी गये होते तो 2 लाख हो जाते, जबकि रैली की कुल भीड़ एक लाख से अधिक नहीं थी। इसका अर्थ स्पष्ट है कि सत्ता के बल पर बस जैसे महंगे साधनों का जम कर दुरूपयोग किया गया। राज्य भर के तमाम निजी स्कूलों से डंडे के बल पर बसों को ले कर सोनिया सेवा में झोंक दिया गया। इसके अलावा अन्य बसों को भी पकड़ा गया। इसके चलते दिल्ली यातायात व्यवस्था ठप्प हो कर रह गयी।

तमाम अखबारों में बड़े पैमाने पर विज्ञापनों द्वारा जनता को बड़ी संख्या में आमन्त्रित किया गया। प्रत्येक आमन्त्रित को मुफ्त सवारी के साथ-साथ पराठे सब्जी सलाद व मिठाई आदि देने की भी घोषणा की गयी। विदित है कि महंगाई से त्रस्त शहर व देहात के बेरोज़गार एवं निठल्ले लोगों को इतनी सुविधा मिल जाये तो वे दिल्ली जैसे महानगर की सैर करने क्यों नहीं आयेंगे? ज़रूर आयेंगे, लेकिन उन्हें सरकारी एजेंडे से कुछ लेना देना नहीं होता। ऐसे लोग बिना किसी सोच, विचार व निष्ठा के किसी भी रैली में जाने को सदैव तैयार रहते हैं। दूसरे शब्दों में जिसकी जेब में जितने पैसे हों वह उतनी बड़ी रैली हर रोज कर सकता है, पैसे हों तो भीड़ जुटाने में कोई समस्या नहीं। जनता से लूटा हुआ पैसा आखिर किस काम आयेगा। इसके विपरीत एक रैली अन्ना की भी हुई थी और कई बार हुई। न कोई विज्ञापन छपवाये गये न कोई सवारी उपलब्ध कराई गयी, न कोई लालच दिया गया, फिर भी लोगों का रेला थम नहीं रहा था रामलीला मैदान के अलावा चाहे तिहाड़ जेल हो या राजघाट, जन्त्र मंत्र हो या इंडिया गेट, हर जगह जन समुन्द्र सा ठाठे मारता चल रहा था। और यह सब सरकार के पूर्ण असहयोग बल्कि जनता को आने से रोकने के बावजूद था। सरकार ने उस रैली को रोकने के लिए तरह तरह के अड़ंगे लगाये, रामलीला मैदान की बजाय कभी बुराड़ी में तो कभी कहीं अन्यत्र रैली करने के आदेश दिये। रैली रोकने के लिये अन्ना को गिरफ़्तार तक भी किया। तमाम सरकारी अड़चनों व रूकावटों के बावजूद जनता ने अपने बल पर रैली की जो इस सरकारी रैली से कहीं बड़ी बेहतर व अनुशासित थी।

सुधी पाठक भूले नहीं होंगे जहां एक ओर सरकार अपनी रैली में अधिक से अधिक लोगों को आने का आह्वान करती है, मन्त्रियों को अधिक से अधिक भीड़ लाने का कोटा तय करती है वहीं, जनता की रैलियों पर पाबंदी लगाती है कि अमुक संख्या से अधिक लोग नहीं जुटने चाहियें। स्वामी रामदेव पर आरोप लगाया गाया कि पांच हज़ार की परमीशन ले कर 50 हज़ार से भी अधिक लोग क्यों जुटा लिये? इस सब के बावजूद अन्ना व रामदेव की रैलियों से दिल्ली की जनता को कोई तकलीफ़ नहीं हुई। कोई जाम नहीं लगे। दिल्ली की जनता ने स्वयं रैली को हाथों हाथ लिया। इसके विपरीत सोनिया की सरकारी रैली में स्थानीय जनता नदारद थी। जगह-जगह जाम से लोग परेशान थे। स्थानीय बसों के रूट मार्ग अस्त व्यस्त हो गये। होते भी क्यों नहीं जब मनुष्यों की अपेक्षा वाहनों की भीड़ अधिक होगी तो प्रदूषण सहित तमाम तरह की परेशानियां होना स्वाभाविक है। अपनी रैली के द्वारा सरकार ने अपनी शक्ति एवं साख का प्रदर्शन करने का प्रयास किया है। इसके द्वारा उसका यह वहम भी पक्का हो गया है कि देश की पूरी जनता उसके साथ है। उसकी तमाम जनविरोधी नीतियों के बावजूद जनता उन्हें सिर आंखों पर रखती है और सत्ता में सदैव बनाये रखेगी। ■